प्राचीन मालवा के

जैन सन्त और उनकी रचनाएँ

डा. तेजसिंह गौड़

मालवा भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। साहित्य के क्षेत्र में भी यह प्रदेश पिछड़ा हुआ नहीं रहा है। कालिदास जैसे कवि इस भूखण्ड की ही देन हैं। यद्यपि संतों को किसी क्षेत्र विशेष से बाँधा नहीं जा सकता और फिर जैन सन्तों का तो सतत विहार होता रहता है। इसलिये उनको किसी सीमा में रखना सम्भव नहीं होता है। उनका क्षेत्र तो न केवल भारत वरन् समस्त विश्व ही होता है। फिर भी जिन जैन सन्तों का मालवा से विशेष सम्पर्क रहा है, जिनका कार्यक्षेत्र मालवा रहा है और जिन्होंने मालवा में रहते हुए साहित्य सृजन किया है, उनका तथा उनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय देने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

(१) **आचार्य भद्रबाहु**—आचार्य भद्रबाहु के सम्बन्ध में अधिकांश व्यक्तियों को जानकारी है। ये भगवान् महावीर के पश्चात् छठवें ग्रेर माने जाते हैं। इनके ग्रन्थ 'दसाउ' और 'दस निज्जुति' के अतिरिक्त 'कल्पसूत्र' का जैन साहित्य में बहुत महत्त्व है ?[1]

(२) **क्षपणक**—ये विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। इनके रचे हुए न्यायावतार, दर्शनशुद्धि, सम्मतितर्क सूत्र और प्रमेयरत्नकोष नामक चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनमें न्यायावतार ग्रन्थ अपूर्व है। यह अत्यन्त लघु ग्रन्थ है, किन्तु इसे देखकर गागर में सागर भरने की कहावत याद आ जाती है, बत्तीस श्लोकों में इस काव्य में क्षपणक ने सारा जैन न्यायशास्त्र भर दिया है। न्यायावतार पर चन्द्रप्रभ सूरि ने न्यायावतार-निवृत्ति नामक विशद टीका लिखी है।

(३) **श्री आर्यरक्षित सूरि**—नंदीसूत्रवृत्ति से यह प्रतीत होता है कि वीर निर्वाण संवत ५८४ ई० सन् ५७ में दशपुर में आर्यरक्षित सूरि नामक एक सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हो गये हैं; जो अपने समय के उद्भट विद्वान, सकलशास्त्र पारंगत एवं आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता थे। यही नहीं, यहाँ तक इनके सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है कि ये इतने विद्वान् थे कि अन्य कई गणों के ज्ञान-पिपासु जैन साधु आपके शिष्य

1. संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृ० 112-114

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे। उस समय आर्यरक्षित सूरि का शिष्य होना महान् भाग्यशाली होने का सूचक माना जाता था। फलतः आपके शिष्यों एवं विद्यार्थियों का कोई पार नहीं था।[1]

इनके पिता का नाम सोमदेव और माता का नाम रुद्रसोमा था। पुरोहित सोमदेव स्वयं भी उच्चकोटि के विद्वान् थे। आर्यरक्षित सूरि के लघुभ्राता का नाम फल्गुरक्षित था जो स्वयं भी इनके कहने से जैन-साधु हो गये थे।

आर्यरक्षित सूरि ने आगमों को चार भागों में विभक्त किया। यथा—(१) करण-चरणानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) धर्म-कथानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग। इसके साथ ही इन्होंने अनुयोगद्वारसूत्र की भी रचना की, जो जैन दर्शन का प्रतिपादक महत्त्वपूर्ण आगम माना जाता है। यह आगम आचार्य प्रवर की दिव्यतम दार्शनिक दृष्टि का परिचायक है।

आर्यरक्षित सूरि का देहावसान दशपुर में हुआ था।[2]

(४) **श्री सिद्धसेन दिवाकर**—श्री पं० सुखलाल जी ने श्री सिद्धसेन दिवाकर के विषय में लिखा है—"जहाँ तक मैं जान पाया हूँ जैन परम्परा में तर्क का और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मय का आदि प्रणेता है सिद्धसेन दिवाकर।"[3] उज्जैन और विक्रम के साथ इनका पर्याप्त सम्बन्ध रहा है।

इनके द्वारा रचित "सन्मतिप्रकरण" प्राकृत में है। जैनदृष्टि और मन्तव्यों को तर्क शैली में स्पष्ट करने तथा स्थापित करने में जैन वाङ्मय में सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर-दिगम्बर विद्वानों ने लिया है। सिद्धसेन ही जैन परम्परा के आद्य संस्कृत स्तुतिकार है।[4]

श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी[5] ने लिखा है कि जैन ग्रन्थों में सिद्धसेन दिवाकर को साहित्यिक एवं काव्यकार के अतिरिक्त नैयायिक और तर्कशास्त्रज्ञों में प्रमुख माना है। सिद्धसेन दिवाकर का स्थान जैन इतिहास में बहुत ऊँचा है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय उनके प्रति एक ही भाव से श्रद्धा रखते हैं। उनके दो स्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है—कल्याण मंदिर स्तोत्र और वर्धमान द्वात्रिंशिका स्तोत्र।

कल्याण मंदिर स्तोत्र ४४ श्लोकों में है। यह भगवान् पार्श्वनाथ का स्तोत्र है। इसकी कविता में प्रासाद गुण कम और कृत्रिमता एवं श्लेष की अधिक भरमार है। परन्तु प्रतिभा की कमी नहीं है। इसके अन्तिम भिन्न छन्द के एक पद्य में इसके कर्त्ता का नाम कुमुदचन्द्र सूचित किया गया है, जिसे कुछ लोग सिद्धसेन का ही दूसरा नाम मानते हैं। दूसरे पद्य के अनुसार यह २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति में रचा गया है। भक्तामर के सदृश होते हुए भी यह अपनी काव्य-कल्पनाओं व शब्द योजना में मौलिक ही है।[6]

---

1. श्रीमद् राजेन्द्रसूरी स्मारक ग्रन्थ, पृ० 453
2. श्री पट्टावली पराग संग्रह, पृ० 137
3. स्व० बाबू श्री बहादुरसिंह जी सिंघी स्मृति ग्रन्थ, पृ० 10
4. The Jain Sources of the History of Ancient India, Page 150-151
5. संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृ० 117-118
6. (अ) संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृ० 119
   (ब) भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० 125-26

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्द्धमान द्वात्रिंशिका स्तोत्र ३२ श्लोकों में भगवान् महावीर की स्तुति है। इसमें कृत्रिमता एवं श्लेष नहीं है। इसमें प्रासाद गुण अधिक है। भगवान् महावीर को शिव, बुद्ध, ऋषिकेश, विष्णु एवं जगन्नाथ मानकर प्रार्थना की गई है।[1]

तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की टीका बड़े-बड़े जैनाचार्यों के की है। इसके रचनाकार को दिगम्बर सम्प्रदाय वाले 'उमास्वामि' और श्वेताम्बर सम्प्रदाय वाले 'उमास्वाति' बतलाते हैं। उमास्वाति के ग्रन्थ की टीका सिद्धसेन दिवाकर ने बड़ी विद्वत्ता के साथ लिखी है।[2] इनका समय ५५०-६०० इस्वी सन् माना गया है।[3]

(५) **जिनसेन**—आचार्य जिनसेन पुन्नाट सम्प्रदाय—आचार्य परम्परा में हुए। पुन्नाट कर्नाटक का ही पुराना नाम है, जिसको हरिषेण ने दक्षिणापथ का नाम दिया है। ये जिनसेन आदिपुराण के कर्त्ता श्रावक धर्म के अनुयायी एवं पंचस्तूपान्वय के जिनसेन से भिन्न हैं। ये कीर्तिषेण के शिष्य थे।

जिनसेन का 'हरिवंश पुराण' इतिहासप्रधान चरितकाव्य श्रेणी का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना वर्द्धमानपुर, वर्तमान वदनावर जिला धार (म० प्र०) में की गई थी। दिगम्बरीय सम्प्रदाय के कथा संग्रहों में इसका स्थान तीसरा है।[4]

(६) **हरिषेण**—पुन्नाट संघ के अनुयायियों में एक दूसरे आचार्य हरिषेण हुए। इनकी गुरु परम्परा मौनी भट्टारक श्री हरिषेण, भरतसेन, हरिषेण इस प्रकार बैठती है। आपने कथाकोष की रचना की। यह रचना उन्होंने वर्द्धमानपुर या बढ़वाण—वदनावर में विनायकपाल राजा के राजकाल में की थी। विनायकपाल प्रतिहार वंश का राजा था जिसकी राजधानी कन्नौज थी। इसका ९८८ वि० का एक दान-पत्र मिला है। इसके एक वर्ष पश्चात् अर्थात् वि० सं० ९८९ शक सम्वत् ८५३ में कथाकोष की रचना हुई। हरिषेण का कथाकोष साढ़े बारह हजार श्लोक परिमाण का बृहद् ग्रन्थ है।[5] यह संस्कृत पद्यों में रचा गया है और उपलब्ध समस्त कथा कोषों में प्राचीनतम सिद्ध होता है। इसमें १५७ कथायें हैं।

(७) **मानतुंग**—इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक विरोधी विचारधारायें हैं। मयूर और बाण के समान इन्होंने स्तोत्र काव्य का प्रणयन किया। इनके भक्तामर स्तोत्र का श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय वाले समान रूप से आदर करते हैं। कवि की यह रचना इतनी लोकप्रिय रही कि इसके प्रत्येक चरण को लेकर समस्यापूर्त्यात्मक स्तोत्र काव्य लिखे जाते रहे। इस स्तोत्र की कई समस्या पूर्तियाँ उपलब्ध हैं।[6]

(८) **आचार्य देवसेन**—देवसेनकृत दर्शनसार का वि० सं० ९९० में धारा के पार्श्वनाथ मंदिर में

---

1. संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी, पृ० 118
2. वही, पृ० 116
3. The Jain Sources of the History of Ancient India, Page 164.
4. The Jain Sources of the History of Ancient India, Page 195 and onward
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 351-52
6. अनेकान्त वर्ष 18, किरण 6, पृ० 242 से 246

www.jainelibrary.org

रचे जाने का उल्लेख मिलता है।[1] इसके अतिरिक्त 'आलाप-पद्धति' इनकी न्याय-विषयक रचना है। एक 'लघुनय चक्र' जिसमें ८७ गाथाओं द्वारा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दो तथा उनके नैगमादि नौ नयों को उनके भेदोपभेद के उदाहरणों सहित समझाया है। दूसरी रचना बृहन्नयचक्र है जिसमें ४२३ गाथायें हैं और उसमें नयों व निक्षेपों का स्वरूप विस्तार से समझाया गया है। रचना के अन्त की ६, ७ गाथाओं में लेखक ने एक महत्त्वपूर्ण बात बतलाई है कि आदितः उन्होंने दव्वसहाव-पयास (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) नाम के इस ग्रन्थ की रचना दोहा बन्ध में की थी किन्तु उनके एक शुभंकर नाम के मित्र ने उसे सुनकर हँसते हुए कहा कि यह विषय इस छन्द में शोभा नहीं देता, इसे गाथाबद्ध कीजिए। अतएव उसे उनके माल्लधवल नामक शिष्य ने गाथा रूप में परिवर्तित कर डाला। स्याद्वाद और नयवाद का स्वरूप समझने के लिए देवसेन की ये रचनायें बहुत उपयोगी हैं।[2] इन्होंने आराधनासार और तत्त्वसार नामक ग्रन्थ भी लिखे हैं। ये सब रचना आपने धारा में ही लिखीं अथवा अन्यत्र यह रचनाओं पर से ज्ञात नहीं होता है।

(९) **आचार्य महासेन**—आचार्य महासेन लाड़-बागड़ के पूर्णचन्द्र थे। आचार्य जयसेन के प्रशिष्य और गुणाकरसेन सूरि के शिष्य थे। महासेन सिद्धान्तज्ञवादी, वाग्मी, कवि और शब्दब्रह्म के विशिष्ट ज्ञाता थे। यशस्वियों द्वारा सम्मान्य, सज्जनों में अग्रणी और पाप रहित थे। ये परमारवंशीय राजा मुंज द्वारा पूजित थे। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की सीमा स्वरूप थे और भव्यरूपी कमलों को विकसित करने वाले बान्धव सूर्य थे तथा सिंधुराज के महामात्य श्री पर्पट के द्वारा जिनके चरण कमल पूजे जाते थे और उन्हीं के अनुरोधवश 'प्रद्युम्न चरित्र' की रचना विक्रमी ११वीं शताब्दी के मध्य भाग में हुई है।[3]

(१०) **आचार्य अमितगति द्वितीय**—ये माथुर संघ के आचार्य थे और माधवसेन सूरि के शिष्य थे। ये वाक्पतिराज मुञ्ज की सभा के रत्न थे। ये बहुश्रुत विद्वान थे। इनकी रचनाएँ विविध विषयों पर उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओं में एक पंच-संग्रह वि० सं० १०७३ में मसूतिकापुर (वर्तमान मसूद विलोदा —धार के निकट) में बनाया गया था। इन उल्लेखों से सुनिश्चित्त है कि अमितगति धारा नगरी और उसके आस-पास के स्थानों में रहे थे। उन्होंने प्रायः अपनी सभी रचनायें धारा में या उसके समीपवर्ती नगरों में प्रस्तुत कीं। बहुत सम्भव है कि आचार्य अमितगति के गुरुजन धारा या उसके समीपवर्ती स्थानों में रहे हों। अमितगति ने सं० १०५० से सं० १०७३ तक २३ वर्ष के काल में अनेक ग्रन्थों की रचना वहाँ की थी।[4] अमितगतिकृत सुभाषित-रत्न संदोह में बत्तीस परिच्छेद हैं जिनमें से प्रत्येक में साधारणतः एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। इसमें जैन नीतिशास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार किया गया है, साथ-साथ ब्राह्मणों के विचारों और आचार के प्रति इसकी प्रवृत्ति विसंवादात्मक है। प्रचलित रीति के ढंग पर स्त्रियों पर खूब आक्षेप किये गये हैं। एक पूरा परिच्छेद वेश्याओं के सम्बन्ध में है। जैन धर्म के आप्तों का वर्णन २८वें परिछेद में किया गया है और ब्राह्मण धर्म के विषय में कहा गया है कि वे उक्त आप्तजनों की समानता नहीं कर सकते, क्योंकि वे स्त्रियों के पीछे कामातुर रहते हैं, मद्यसेवन करते हैं

---

1. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ, 544
2. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० 87
3. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० 544-45
4. वही, पृ० 545

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और इन्द्रियासक्त होते हैं ?[1] अमितगतिकृत श्रावकाचार लगभग १५०० संस्कृत पद्यों में पूर्ण हुआ है और वह पन्द्रह अध्यायों में विभाजित है, जिनमें धर्म का स्वरूप, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का भेद, सप्त तत्त्व, पूजा व उपवास एवं बारह भावनाओं का सुविस्तृत वर्णन पाया जाता है।[2] आपके योगसार में ९ अध्यायों में नैतिक व आध्यात्मिक उपदेश दिये गये हैं।[3] इनकी अन्य रचनाओं में भावना द्वात्रिंशतिका, आराधना सामायिक पाठ और उपासकाचार का उल्लेख किया जा सकता है।[4] सुभाषित रत्न संदोह की रचना वि० ९९८ में हुई थी और उसके बीस वर्ष पश्चात् उन्होंने धर्म परीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना की।[5]

आचार्य अमितगति की कुछ रचनाओं का उल्लेख मिलता है किन्तु आज वे उपलब्ध नहीं है। ऐसी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) जम्बूद्वीप, (२) सार्धद्वयद्वीप प्रज्ञप्ति, (३) चन्द्रप्रज्ञप्ति और (४) व्याख्याप्रज्ञप्ति।[6]

(११) आचार्य माणिक्यनन्दी—आचार्य माणिक्यनन्दी दर्शन के तलदृष्टा विद्वान और त्रैलोक्यनन्दी के शिष्य थे। ये धारा के निवासी थे और वहाँ वे दर्शनशास्त्र का अध्यापन करते थे। इनके अनेक शिष्य थे।[7] नयनंदी उनके प्रथम विद्याशिष्य थे। उन्होंने अपने सकल विधि विधान नामक काव्य में माणिक्यनन्दी को महापण्डित बतलाने के साथ-साथ उन्हें प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप प्रमाण जल से भरे और नय रूप चंचल तरंग समूह से गम्भीर उत्तम, सप्तभंग रूप कल्लोलमाला से विभूषित जिनशासन रूप निर्मल सरोवर से युक्त और पण्डितों का चूड़ामणि प्रकट किया है।[8] माणिक्यनन्दी द्वारा रचित एक मात्र कृति परीक्षामुख नामक एक न्यायसूत्र ग्रन्थ है जिसमें कुल २७७ सूत्र हैं। ये सूत्र सरल, सरस और गम्भीर अर्थ द्योतक हैं। माणिक्यनन्दी ने आचार्य अकलंकदेव के वचन समुद्र का दोहन करके जो न्याया-मृत निकाला वह उनकी दार्शनिक प्रतिभा का द्योतक है।[9]

(१२) नयनन्दी—ये माणिक्यनन्दी के शिष्य थे। ये काव्य-शास्त्र में विख्यात थे। साथ ही प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश के विशिष्ट विद्वान् थे। छन्द शास्त्र के भी ये परिज्ञानी थे। नयनन्दीकृत "सकल विधि विधान कहा" वि० सं० ११०० में लिखा गया।[10] यद्यपि यह खण्डकाव्य के रूप में है किन्तु विशाल काव्य में रखा जा सकता है। इसकी प्रशस्ति में इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। उसमें कवि ने ग्रन्थ बनाने के प्रेरक हरिसिंह मुनि का उल्लेख करते हुए अपने से पूर्ववर्ती जैन-जैनेतर और कुछ सम-सामयिक विद्वानों का भी उल्लेख किया है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है।[11] इनकी दूसरी कृति सुदर्शन चरित्र है। यह अपभ्रंश का खण्डकाव्य है। इसकी रचना वि० सं० ११०० में हुई।[12] यह खण्डकाव्य महाकाव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग 2, कीथ, पृ० 286-87
2. वही, पृ० 121
3. वही, पृ० 81
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास—गैरोला, पृ० 345
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग 2, कीथ, पृ० 286-87
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृ० 345
7. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० 546
8. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, भाग 1, पृ० 26
9. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० 546
10. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० 64
11. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० 547-48
12. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० 163

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१३) **प्रभाचन्द्र**—माणिक्यनन्दी के विद्याशिष्यों में प्रभाचन्द्र प्रमुख रहे। ये माणिक्यनन्दी के परीक्षामुख नामक सूत्र ग्रन्थ के कुशल टीकाकार हैं। दर्शन साहित्य के अतिरिक्त वे सिद्धान्त के भी विद्वान थे। इन्हें राजा भोज के द्वारा प्रतिष्ठा मिली थी।

इन्होंने विशाल दार्शनिक ग्रन्थों की रचना के साथ-साथ अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) प्रमेय कमलमार्तण्ड—दर्शन ग्रन्थ है जो माणिक्यनन्दी के परीक्षामुख की टीका है। यह ग्रन्थ राजा भोज के राजकाल में लिखा गया। (२) न्याय कुमुदचन्द्र न्याय विषयक ग्रन्थ है। (३) आराधना कथा कोश गद्य ग्रन्थ है। (४) पुष्पदन्त के महापुराण पर टिप्पण। (५) समाधितन्त्र टीका—ये सब ग्रन्थ राजा जयसिंह के समय में लिखे गये। (६) प्रवचन सरोज भास्कर। (७) पंचास्तिकाय प्रदीप। (८) आत्मानुशासन तिलक। (९) क्रियाकलाप टीका। (१०) रत्नकरण्ड टीका। (११) बृहत् स्वयंभू स्तोत्र टीका। (१२) शब्दाम्भोज टीका—ये सब कब और किसके समय में लिखे गये, कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इन्होंने देवनन्दी की तत्त्वार्थवृत्ति के विषम पदों की एक विवरणात्मक टिप्पणी भी लिखी है। इनका समय ११वीं सदी का उत्तरार्द्ध एवं १२वीं सदी का पूर्वार्द्ध ठहरता है।

इनके नाम से अष्ट पाहुड पंजिका, मूलाचार टीका, आराधना टीका आदि ग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है, जो उपलब्ध नहीं हैं।[1]

(१४) **आशाधर**—पं० आशाधर संस्कृत साहित्य के अपारदर्शी विद्वान् थे। ये मांडलगढ़ के मूल निवासी थे किन्तु मेवाड़ पर मुसलमान बादशाह शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमणों से त्रस्त होकर मालवा की राजधानी धारानगरी में स्वयं अपनी एवं परिवार की रक्षा के निमित्त अन्य लोगों के साथ आकर बस गये थे। धारा नगरी उस समय साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र थी, इसीलिए इन्होंने भी वहीं व्याकरण एवं न्यायशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। धारा नगरी से साहित्य एवं संस्कृति का परिज्ञान एवं नलकच्छपुर (वर्तमान नालछा) में साधु जीवन प्राप्त हुआ था। नालछा का नेमिनाथ चैत्यालय उनकी साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। वे लगभग ३५ वर्ष तक नालछा में ही रहे और वहीं एकनिष्ठा से साहित्य सर्जन करते रहे।[2]

पंडित आशाधर बहुश्रुत और बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान् हुए। काव्य, अलंकार, कोश, दर्शन, धर्म और वैद्यक आदि अनेक विषयों पर उन्होंने ग्रंथ लिखे थे। वे धर्म के बड़े उदार थे।[3] इनके द्वारा रचित ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है :—

१. **सागार धर्मामृत**—सप्त व्यसनों के अतिचारों का वर्णन, श्रावक की दिनचर्या और साधक की समाधि व्यवस्था आदि इसके वर्ण्य विषय हैं।[4] यह ग्रंथ लगभग ५०० संस्कृत पद्यों में पूर्ण हुआ है

---

1. (अ) गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ के आधार पर, पृ० 548 और आगे
   (ब) संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृ० 355
2. अनेकांत वर्ष 17, किरण 2, जून 1964, पृ० 67
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृ० 347
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृ० 346

और आठ अध्यायों द्वारा श्रावक धर्म का सामान्य वर्णन, अष्टमूल गुण तथा ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण किया गया है। व्रत प्रतिमा के भीतर बारह व्रतों के अतिरिक्त श्रावक धर्म की दिनचर्या भी बतलाई गई है। अन्तिम अध्याय के ११० श्लोकों में समाधिमरण का विस्तार से वर्णन हुआ है। रचना शैली काव्यात्मक है। ग्रंथ पर कर्ता की स्वोपज्ञ टीका उपलब्ध है; जिसमें उसकी समाप्ति का समय वि० सं० १२९६ या ई० सन् १२३९ उल्लिखित है।[1]

२. **प्रमेय रत्नाकर**—यह ग्रंथ स्याद्वाद विद्या की प्रतिष्ठापना करता है।[2]

३. **अध्यात्म रहस्य**—इसमें ७२ संस्कृत श्लोकों द्वारा आत्मशुद्धि और आत्म-दर्शन एवं अनुभूति का योग की भूमिका पर प्ररूपण किया गया है। आशाधर ने अपनी अनगार धर्मामृत की टीका की प्रशस्ति में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की एक प्राचीन प्रति की अन्तिम पुष्पिका में इसे धर्मामृत का योगीद्दीपन नामक अठारहवाँ अध्याय कहा है। इससे प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ का दूसरा नाम योगीद्दोपन भी है और इसे कर्त्ता ने अपने धर्मामृत के अन्तिम उपसंहारात्मक अठारहवें अध्याय के रूप में लिखा था। स्वयं कर्त्ता के शब्दों में उन्होंने अपने पिता के आदेश से आरब्ध योगियों के लिए इसकी रचना की थी।[3]

इनकी अन्य रचनाओं में, ४. धर्मामृत मूल, ५. ज्ञान दीपिका, ६. भव्य कुमुद चंद्रिका—धर्मामृत पर लिखी टीका, ७. मूलाराधना टीका, ८. आराधनासार, ९. नित्यमहोद्योत, १०. रत्नत्रय विधान, ११. भरतेश्वरभ्युदय—इस महाकाव्य में भरत के ऐश्वर्य का वर्णन है। इसे सिद्धचक्र भी कहते हैं। क्योंकि इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में सिद्धि पद आया है। १२. राजमति विप्रलम्भ—खण्ड काव्य है। १३. इष्टोपदेश टीका, १४. अमरकोश, १५. क्रिया कलाप, १६. काव्यालंकार, १७. सहस्र नाम स्तवनटीका, १८. जिनयज्ञकल्पसटीक इसका दूसरा नाम प्रतिष्ठासारोद्धार धर्मामृत का एक अंग है। १९. त्रिषष्टि, २०. अष्टांग हृदयोद्योतिनी टीका—वाग्भट के आयुर्वेद ग्रन्थ अष्टांगहृदयी की टीका और २१. भूपाल चतुर्विंशति टीका।[4]

(१५) **श्रीचन्द्र**—ये धारा के निवासी थे। लाड़ बागड़ संघ और बलात्कार गण के आचार्य थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

(१) रविषेण कृत पद्म चरित पर टिप्पण, (२) पुराणसार, (३) पुष्पदंत के महापुराण पर टिप्पण, (४) शिवकोटि की भगवती आराधना पर टिप्पण।

अपने ग्रन्थों की रचना इन्होंने विक्रम की ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्ध (वि० सं० १०८० एवं १०९७) में की।

---

1. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० 114
2. वीरवाणी, वर्ष 18, अंक 13 पृ० 21
3. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृ० 122
4. (अ) वीरवाणी वर्ष 18 अंक 13
   (ब) जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पृ० 396 विस्तृत परिचय के लिए देखें—"जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, भाग 2—पं० परमानन्द शास्त्री, पृ० 408 से आगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६) **भट्टारक श्रुतकीर्ति**—ये नंदी संघ बलात्कार गण और सरस्वती गच्छ के विद्वान थे। ये त्रिभुवन मूर्ति के शिष्य थे। अपभ्रंश भाषा के विद्वान थे। इनकी चार रचनायें उपलब्ध हैं—(१) हरिवंश पुराण (२) धर्म परीक्षा (३) परमेष्ठि प्रकाश सार एवं (४) योगसार।

(१७) **कवि धनपाल**—ये मूलतः ब्राह्मण थे। लघुभ्राता से जैनधर्म में दीक्षित हुए। वाक्पतिराज मुन्ज की विद्वत् सभा के रत्न थे। मुन्ज द्वारा इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि दी गई थी। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। इनका समय ११वीं सदी निश्चित है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—१. पाइयलच्छी नाम माला—प्राकृत कोश २. तिलक मंजरी—संस्कृत गद्य काव्य, ३. अपने छोटे भाई शोभन मुनिकृत स्तोत्र ग्रन्थ पर एक संस्कृत टीका ४. ऋषभ पंचाशिका—प्राकृत ५. महावीर स्तुति ६. सत्य पुरीय ७. महावीर उत्साह—अपभ्रंश और ८. वीरथुई।[1]

(१८) **मेरुतुंगाचार्य**—इन्होंने अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रन्थ 'प्रबन्ध चिंतामणि' वि० सं० १३६१ में लिखा। इसमें पांच सर्ग हैं। इसके अतिरिक्त विचार श्रेणी, स्थविरावली और महापुरुष चरित या उपदेश शती—जिसमें ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान तीर्थंकरों के विषय में जानकारी है, की रचना की।

(१९) **तारणस्वामी**—ये तारण पंथ के प्रवर्तक आचार्य थे। इनका जन्म पुहुपावती नगरी में सन् १४४८ में हुआ था। आपकी शिक्षा श्रुतसागर मुनि के पास हुई। इन्होंने कुल १४ ग्रन्थों की रचना की जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. श्रावकाचार, २. माला जी, ३. पंडित पूजा, ४. कमलबत्तीसी, ५. न्याय समुच्चयसार, ६. उपदेशशुद्धसार, ७. त्रिभंगीसार, ८. चौबीसठाना, ९. ममलपाहु, १०. सुन्न स्वभाव, ११. सिद्ध स्वभाव, १२. खात का विशेष, १३. छद्मस्थवाणी और १४. नाम माला।[2]

(२०) **धर्मकीर्ति**—इन्होंने पद्मपुराण की रचना सरोजपुरी (मालवा) में की थी। भट्टारक ललितकीर्ति इनके गुरु थे। इन्होंने अपने उक्त ग्रन्थ को सम्वत् १६६९ में समाप्त किया था। सम्वत् १६७० की प्रति में लिपिकार ने इनको भट्टारक नाम से सम्बोधित किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि पद्मपुराण की रचना के बाद ये भट्टारक बने थे।[3] इनकी दूसरी रचना का नाम हरिवंश पुराण है। हरिवंश पुराण को आश्विन महीने की कृष्णा पंचमी सं० १६७१ रविवार के दिन पूर्ण किया था।[4]

विस्तार भय से अपनी लेखनी को विराम देते हुए जिज्ञासु विद्वानों से अनुरोध है कि इस विषय पर विशेष शोध कर लुप्त साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयास करें। यहां तो केवल गिनती के जैन संतों के नामों और उनके ग्रन्थों को गिनाया गया है। यदि इस विषय पर गहराई से अध्ययन किया जाये तो एक अच्छा शोध प्रबन्ध तैयार हो सकता है।

□ ● □

---

1. जैन साहित्य और इतिहास, प्रेमी पृ० 468-69
2. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-4, पृ० 243 से 245, डा० नेमीचन्द शास्त्री।
3. प्रशस्ति संग्रह—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० 9
4. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, भाग-2, पृ० 541-42